Indian J. Soc. & Pol. 10 (01) : 89-92: 2023 **ISSN : 2348-0084 (PRINT)**
First Published Online 31 JANUARY 2023 **ISSN: 2455-2127 (ONLINE)**

महान समाज सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती

रविन्द्र गासो[1]

[1]एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी–विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पूण्डरी (कैथल), डी.ए.वी. कॉलेज, कुरुक्षेत्र (हरियाणा), भारत

ABSTRACT

महर्षि दयानन्द सरस्वती (1824–1883 ई.) ने 1875 में 'आर्य समाज' की स्थापना की तथा इसी वर्ष अपना ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रकाशित किया। उनका समय 1857 के गदर के बाद राष्ट्रीय आंदोलन और नवजागरण के प्रारम्भिक चरण का था। पश्चिमी धर्म और संस्कृति के प्रचार–प्रसार का मुकाबला करने तथा राजनीतिक पराधीनता से मुक्ति के लिए महर्षि ने धर्म और समाज में क्रान्तिकारी सुधारों की प्रस्तावना दी और 'आर्य समाज' ने उन्हें व्यवहारिक रूप दिया। भारतीय धर्म और समाज को तत्कालीन चुनौतियों–संकटों और पश्चिम के मुकाबले दुर्बल बनाने वाले तर्क व बुद्धि–विहीन ऊँच–नीच, जन्म पर आधारित जाति प्रथा, छुआछूत, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थ, गंगा स्नान, चमत्कार, अर्थहीन अनुष्ठान और उपवास, समुद्र यात्रा से धर्म भ्रष्ट होना, धार्मिक अन्धविश्वास, सुख–दुःख का ग्रहों से सम्बन्ध, श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान, बाल विवाह, पुराणों और वेद–विरुद्ध विभिन्न धार्मिक मतों–सम्प्रदायों आदि का दयानन्द ने तर्कपूर्ण खण्डन कर भारतीय नवजागरण में विशेष योगदान दिया। वेदों की निर्विकल्प सर्वोच्चता स्थापित कर महर्षि ने हिन्दू समाज को खण्डित, दरिद्र, अंधविश्वासी, भाग्यवादी बनाने वाले वेद के मूल्यों–मान्यताओं के विपरीत चलने वाले मत–मतान्तरों का खण्डन किया। 'परिवार' और 'विवाह' नामक संस्थाओं में सुधारों की प्रस्तावना के साथ–साथ उन्होंने मूर्तिपूजा, अवतारवाद को वेद–विरुद्ध बताया। तर्क–बुद्धि के आधार पर सप्रमाण उन्होंने स्त्री और शूद्रों के उद्धार का आंदोलन चलाया। गुण–कर्म के आधार पर वर्ण के निर्धारण द्वारा उन्होंने जन्मना–पोपवाद को निर्मूल बताया। पौराणिक–धर्म द्वारा फैलाये भाग्यवाद को उन्होंने समाज और राज्य–व्यवस्था में समस्त भ्रष्टाचार, शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न, गुलामी, अन्याय, अनैतिकता का कारण बताकर पुरुषार्थ का रास्ता बताया। भाग्य की बजाय कर्म की महत्ता ने 'आर्य समाज' को क्रान्तिकारी संगठन बनाया तथा आजादी की लड़ाई समेत समाज के विभिन्न क्षेत्रों में लाखों लोगों को परोपकारी व परिवर्तनकामी कर्म की प्रेरणा दी। असंख्य आर्य समाजी संस्थाओं और डी.ए.वी. आंदोलन ने महर्षि के निःशुल्क सार्वजनिक अनिवार्य शिक्षा के आदेश को व्यवहारिक रूप देकर समाज–सुधार का ऐतिहासिक काम किया और कर रहे हैं।

KEYWORDS: महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, आर्य समाज,

महर्षि दयानन्द सरस्वती (1824–1883 ई.) ने 1875 ई. में 'आर्य समाज' की स्थापना की थी। उन्होंने अपने सिद्धान्तों, मत–मंतव्य को बताने के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ लिखा; जिसका प्रथम संस्करण 1875 ई. में प्रकाशित हुआ। दूसरा संशोधित और वर्तमान संस्करण 1884 ई. में महर्षि के देहावसान के बाद प्रकाशित हुआ था। महर्षि दयानन्द के पिता पौराणिक देवता भगवान शिव के उपासक थे। उनके आग्रह पर 14 वर्षीय बालक मूलशंकर (दयानन्द) ने शिवरात्रि का व्रत रख कर रात्रि–जागरण किया लेकिन एक साधारण तथा नगण्य घटना ने उसकी भावी जीवन धारा ही बदल कर रख दी। शिव प्रतिमा पर एक चूहा चढ़ आया और नैवेद्य आदि खाने लगा। मूर्तिपूजक के लिए प्रतिमा स्वयं ही ईश्वर होती है। मूर्ति में मनुष्य को वरदान अथवा अभिशाप देने की शक्ति निहित होती है, परन्तु बालक ने देखा कि सच्चाई तो कुछ और है। सच्चाई यह है कि मूर्ति तो सर्वथा जड़ वस्तु है, जो खुद उस चूहे से अपनी रक्षा करने में असमर्थ है। दयानन्द के तार्किक मस्तिष्क ने सोचा कि पुरोहित वर्ग द्वारा मूर्ति को ईश्वर बताना लोगों को मूर्ख बनाने के लिए किया प्रपंच है। उसने मूर्तिपूजा और उससे जुड़े कर्मकाण्डों से अपने को अलग कर लिया। 1836 ई. में उन्होंने गृह त्याग दिया। कई वर्ष तक भ्रमण–अध्ययन करने और गुरु विरजानन्द सरस्वती (1779–1868 ई.) से वेदशास्त्रों, संस्कृत व्याकरण आदि की शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने अपना मत स्थापित किया। 1869 ई. में काशी के पौराणिक पण्डितों से ऐतिहासिक शास्त्रार्थ किया। 1875 ई. में महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण निकलवाया।

महर्षि का समय और समाज

1857 (भारत का प्रथम स्वतन्त्रता–संग्राम) आधुनिक भारतीय इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण साल था। महर्षि दयानन्द उस समय 33 वर्ष के थे। 1757 ई. में प्लासी के युद्ध के बाद ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने राजनीतिक वर्चस्व को स्थापित करने के साथ सांस्कृतिक–कार्य–योजना पर भी बड़े स्तर पर काम शुरू किया। स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटियों की स्थापना द्वारा अंग्रेजी–आधुनिक शिक्षा का प्रचार– प्रसार शुरू हुआ। दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों ने भारतीय जनता को ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करना शुरू किया। जो भारतीय समाज और धर्म उस समय जर्जर अवस्था में था, उसमें क्रान्तिकारी सुधारों के लिए महर्षि दयानन्द ने विशाल ऐतिहासिक योगदान दिया। यह भारतीय नवजागरण का दौर था। महर्षि दयानन्द ने वेदों का केन्द्रीय महत्त्व बता कर और वेदों का हिन्दी में अनुवाद करके तथा वेदभाष्य द्वारा समाज को खण्डित करने वाले सभी पौराणिक मतों का अन्धेरा व अन्धकार दूर किया। समाज को दरिद्र व गुलाम बनाने वाली धार्मिक कुरीतियां, अन्धविश्वासों, पाखण्ड, जड़ता,

1: Corresponding Author

भाग्यवाद और जन्मना ऊँच–नीच का, धार्मिक–सामाजिक–राजनीतिक भ्रष्टाचार की कड़ी आलोचना 'सत्यार्थ प्रकाश' में प्रबल रूप से की गई है।

भारतीय धर्म और समाज को तत्कालीन चुनौतियों–संकटों और पश्चिम के मुकाबले दुर्बल बनाने वाले तर्क व बुद्धि–विहीन, ऊँच–नीच, जन्म पर आधारित जाति प्रथा, छुआछूत, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थ, गंगा स्नान, चमत्कार, अर्थहीन अनुष्ठान और उपवास, समुद्र यात्रा से धर्म भ्रष्ट होना, धार्मिक अन्धविश्वास, सुख–दुःख का ग्रहों से सम्बन्ध, श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान, बाल विवाह, पुराणों और वेद–विरुद्ध विभिन्न धार्मिक मतों–सम्प्रदायों आदि का दयानन्द ने तर्कपूर्ण खण्डन कर भारतीय नवजागरण में विशेष योगदान दिया।

वेदों की निर्विकल्प सर्वोच्चता : एकता का सूत्र

हिन्दू समाज विभिन्न मत–मतान्तरों के भ्रमजाल में फंसकर खण्डित, दरिद्र, अंधविश्वासी, भाग्यवादी बना हुआ था। हजारों–लाखों कल्पित देवी–देवता, अवतार, पीर–पैगम्बर, गुरु और उनके ग्रन्थ जन–मानस को कुण्ठित कर रहे थे। शूद्रों और स्त्रियों को कोई मानवीय अधिकार नहीं था; इस प्रकार बड़ी आबादी अपमान, उत्पीड़न, शोषण व अपवर्जन का नरक भोग रही थी। 'परिवार' और 'विवाह' नामक संस्थाएं बहुत सी कुरीतियों, जड़ मान्यताओं का शिकार होकर पश्चिम के उन्नत–समाजों के आगे अपनी दयनीयता पर रो रही थीं। महर्षि ने पाया कि हिन्दू धर्म के पतन का कारण वेदों की परम्परा को त्यागना है। वेदों की पौराणिक पंडितों द्वारा की व्याख्याओं को उन्होंने सप्रमाण खारिज़ किया। 'उन्होंने सर्वप्रथम घोषित किया कि ईश्वर एक है और उसका कोई विकल्प नहीं। विभिन्न कल्पित देवी–देवता, अवतार, पीर, पैगम्बर, गुरु आदि ईश्वर के समकक्ष नहीं हैं। केवल ईश्वर ही उपास्य है। वह सर्वशक्तिमान है। उसे दुष्टों का संहार करने के लिए अवतार लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ईश्वर जब निराकार है तो उसकी मूर्ति का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

'सत्यार्थ प्रकाश' के सप्तम समुल्लास में ईश्वरावतार निषेध प्रसंग में महर्षि लिखते हैं:– ''जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्धगुणकर्म स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत; अन्य नहीं।''(सरस्वती,1998 पृ॰135) मूर्ति पूजा को अज्ञानता के अतिरिक्त क्या कहा जाए? महर्षि 'सत्यार्थ प्रकाश' के 'एकादशसमुल्लास' में 'मूर्तिपूजा समीक्षा' प्रसंग में विस्तार से सभी प्रश्नों का उत्तर देते हैं।''जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना।''(वही, पृ0211)

उन्होंने वेदों से निषिद्ध मूर्ति–पूजादि कर्मों को पाप अधर्म सिद्ध किया। वेदों में कहा गया है कि परमेश्वर जन्म–मरण और शरीरधारण रहित है। उसका अवतार कभी नहीं हो सकता। ''जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है। क्या ईश्वरकृत इन महान रचनाओं को देख उसका स्मरण नहीं हो सकता? इसलिए मूर्ति देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह सर्वथा मिथ्या है। और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय वहां मुझे कोई हीं देखता। इसलिए वह अनर्थ करे बिना नहीं चूकता इत्यादि अनेक दोष मूर्ति–पूजा करने से सिद्ध होते हैं।''(वही, पृ0210)

'नाम स्मरण' भी व्यवहार–कर्म द्वारा करना चाहिए न कि जाप करने, माला फेरने इत्यादि द्वारा। ''... जैसे 'न्यायकारी' ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना; अन्याय कभी न करना।(वही, पृ0211) इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता हैं।'' महर्षि कहते हैं – ''सुनो भाई भोले भाले लोगो! ये पोप जी तुम को ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पाषाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वर के आवाह्न विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।''(वही पृ0212) महर्षि ने वेदों के अनुसार लिखे ग्रन्थों को ही मान्यता दी है। इसलिए अवतारवाद का सिद्धान्त देने वाले ग्रन्थों को महर्षि ने वेद विरुद्ध और इसलिए त्याज्य बताया। पुराण–ग्रन्थों का मूर्ति पूजा से अभिन्न सम्बन्ध है इसलिए ऐसे ग्रन्थों का भी त्याग कर देना चाहिए। इन कपोल कल्पित गडंग–पुराणों ने देवताओं उनकी कहानियों व मूर्तियों की स्थापना की, वैदिक धर्म का विनाश किया है। मूर्ति के साथ देवता और फिर उस देवता का पुराण–ग्रन्थ भी पैदा हुआ। और फिर उसके साथ देवता का मन्दिर, कर्मकाण्ड और अनेक प्रकार के पाखण्ड– अन्धविश्वास पैदा हुए। अब देवताओं की गिनती कीजिए। लाखों–करोड़ों देवमूर्तियों और उनसे जुड़ी पोप लीला में दबा कोई समाज स्वतन्त्रता–स्वराज्य की कल्पना कैसे कर सकता है?

वास्तव में महर्षि भारत को दुर्दशा और परतन्त्रता से उभारने के लिए इसके पतन के कारणों की खोज करते हैं। ईसाई–मुसलमान मिशनरियों के विस्तार का और सैंकड़ों वर्ष की गुलामी का कारण उन्होंने खोज निकाला।

स्त्री और शूद्रों का उद्धार

उन्होंने पाया कि स्त्री और दलित का उद्धार किए बिना और जाति–भेद व पौराणिकों द्वारा फैलाये झूठे मत–सम्प्रदायों को मिटाए बिना धर्म–देश–समाज की मुक्ति संभव नहीं और मतैक्य वेदों की शिक्षाओं के मानने से ही होगा। इसीलिए उन्होंने वेदों द्वारा निषिद्ध मूर्तिपूजा का विरोध किया। दयानन्द ने वेदों की निर्विकल्प सर्वोच्चता स्थापित करने के बाद तर्कपूर्ण और तथ्यपूर्ण वेद भाष्य द्वारा वेदों के अध्ययन के द्वार शूद्रों और स्त्रियों के लिए खोल दिए हैं। महर्षि की स्मृति में आर्य–समाज ने सैंकड़ों शिक्षण संस्थाएँ स्थापित कीं, जिन्होंने स्त्रियों, दलितों के उत्थान–उद्धार का ऐतिहासिक महत्त्व का महान व विशाल योगदान दिया।

गुण–कर्म का सिद्धान्त

महर्षि दयानन्द ने वर्ण–व्यवस्था को जन्म के आधार पर होने का जबरदस्त खण्डन किया। वेदों में लिखा हुआ है कि गुण–कर्म के अनुसार पुराकाल में अब्राह्मण ब्राह्मण का पद प्राप्त कर सका और जन्मना ब्राह्मण वैयक्तिक अयोग्यता के कारण ब्राह्मण–पद से बहिष्कृत किया गया। लाला लाजपत राय लिखते हैं :– ''जब दयानन्द का चिन्तन सर्वोच्च स्थिति पर पहुँचा, तब वे इस परिणाम पर पहुँचे कि हिन्दू धर्म में ब्राह्मण ही सर्वशक्तिमान है। ... वही धर्म का एकमात्र भाष्यकार है। वही निर्धारित करता है कि प्रत्येक मनुष्य को क्या मानना और क्या करना चाहिए। स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार उस युग में सर्वथा लुप्त था।''(राय,2001,पृ082) स्वामी जी का मत है कि वेदों का अधिकृत विद्वान, लोभ–लालच से परे प्रशान्त–वृत्ति का व्यक्ति ही ब्राह्मणोचित व्यवहार और सम्मान का पात्र हो सकता है।

हिन्दू धर्म का पतन करने वाले पोपवाद का प्रतिवाद करने के लिए महर्षि ने रोम के पोपों के बारे में बताते हुए भारत के 'पोप' जन्मना–ब्राह्मण द्वारा फैलाये गये पाखण्ड के बारे में जनता को जागरूक किया। पुराण, ग्रन्थ, मूर्तिपूजा, तीर्थ–सरोवर, मृतक–श्राद्ध, फलित ज्योतिष, झाड़ा–टोना, कर्मकाण्ड, विभिन्न देवी देवता, अवतार, पीर, पैगम्बर आदि सभी अवैदिक मान्यताएं ब्राह्मण पोपों द्वारा फैलाई गई हैं जो सर्वथा त्याज्य हैं। महर्षि ने इन सभी को छोड़ देने का आदेश दिया। भारत में फैली अन्य दार्शनिक–सैद्धान्तिक भ्रान्तियों जैसे भाग्यवाद, पापमुक्ति आदि और सामाजिक बुराईयों यथा सती प्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह, विधवा की दुर्गति, शूद्र–अशूद्र, स्त्री पराधीनता आदि का जन्मदाता भी जन्मना ब्राह्मण का पोपवाद है। 'सत्यार्थ प्रकाश' व ऋषि दयानन्द का अन्य साहित्य शास्त्रों के अनुसार सप्रमाण व्याख्या द्वारा इस अधिकारवाद को समाप्त करता है।

भाग्यवाद नहीं पुरुषार्थ

भारतीय जन–मानस में व्याप्त भाग्यवाद से समाज और राज्य–व्यवस्था में शोषण, भ्रष्टाचार, अत्याचार, उत्पीड़न, गुलामी, अन्याय, दरिद्रता, अनैतिकता का प्रसार हुआ। महर्षि भाग्य के सिद्धान्त को मानकर हाथ पर हाथ रख कर परिस्थितियों के भरोसे बैठे रहने का उपदेश नहीं देते। सब कुछ पूर्व निर्धारित है, परमेश्वर की इच्छा के बिना पत्ता तक नहीं हिलता – महर्षि ऐसा नहीं मानते। उनका कहना है कि ईश्वर न्यायकारी है और ''जीव आप ही आप स्वतन्त्र कर्मों को करता है, ईश्वर कुछ नहीं कराता।'' ''ईश्वर ... जीवों के कर्मों को करने वा कराने वाला नहीं।'' लेकिन ऋषि का स्पष्ट कहना है कि कर्म का फल अवश्य मिलेगा। अच्छे कर्मों के लिए अच्छा उत्साहवर्धन और अन्याय करने वाले को दण्ड का भय जरूरी है। कर्म करने को महत्त्व देते हुए ऋषि दयानन्द 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' मे लिखते हैं – ''पहले पूर्ण शक्ति लगाकर कर्म करना है, फिर ईश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना।'' पुरुषार्थ के बाद ही प्रार्थना करनी योग्य है। महर्षि लिखते हैं – ''जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते (हैं), वे महामूर्ख हैं। क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है, उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा। (प्रकाश ,2004पृ094)

अन्याय के विरुद्ध लड़ने और परिस्थितियों से कभी समझौता न करने का उपदेश देते हुए महर्षि लिखते हैं – ''मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मतव् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे, ओर धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं, की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महा बलवान और गुणवान भी हो, तथापि उसका नाश अवन्नति और अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें।''(वही,पृ094–95) महर्षि ने इस तरह मानवता और समाज व राज्य व्यवस्था का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है जिसमें सुख, समता, स्वतन्त्रता के अनेक सूत्र निकलते हैं।

उन्होंने पुरुषार्थ को प्रारब्ध से बड़ा बताया है – ''पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं। इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।''(वही,पृ095) कर्मशीलता का सन्देश देने वाले महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम चरण) में लिखते हैं–''जो परिश्रम बिना पदार्थ मिलता है, उसमें प्रसन्नता भी नहीं होती, बिना परिश्रम कुछ भी काम नहीं होता।''

कर्म का महत्त्वा ऋषि जी ने सर्वोच्च बताया है क्योंकि वे सबको जन्म से समान मानते हैं फिर उसे अर्जित योग्यता एवं गुण–कर्म के आधार पर वर्ण विशेष का अधिकारी माना है। महर्षि ने स्वमन्त–व्यामन्तव्यप्रकाश, आर्थोद्देश्यरत्नमाला, ऋग्वैदादिभाष्यभूमिका (वर्णाश्रम प्रकरण) तथा सत्यार्थप्रकाश **(चतुर्थ समुल्लास)** में वर्ण व्यवस्था को कर्मणा माना है, जन्मना नहीं। भाग्य की बजाय कर्म की महत्ता ने आर्य समाज को क्रान्तिकारी संगठन बनाया तथा आजादी की लड़ाई समेत समाज के विभिन्न क्षेत्रों में लाखों लोगों को परोपकारी व परिवर्तनकामी कर्म करने की प्रेरणा दी।

स्वदेशी आंदोलन का सामाजिक पक्ष

दयानन्द के समय साम्राज्यवादी अंग्रेज शासन से भारत की जनता भयंकर अकाल, महामारी, गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा का शिकार थी। सामाजिक एकता, सामुदायिक भावना तथा सहकारी चेतना के विकास द्वारा महर्षि ने लोगों को स्वदेशी आंदोलन के लिए तैयार किया। अनपढ़ता, आर्थिक विषमता और राजनीतिक परावलम्बन को दयानन्द ने भारतीयों की पिछड़ी स्थिति का प्रमुख कारण बताया।

अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के लिए उन्होंने सरकार को आदेश दिया। उन्होंने कहा कि ऐसा राज्य–कानून होना चाहिए, जिसमें मां–बाप को पांच साल या ज्यादा से ज्यादा आठ साल तक के अपने लड़कों या लड़कियों को विद्यालय में प्रवेश दिलाना अनिवार्य बताया जाये। यह आदेश न मानने वाले मां–बाप को राज्य द्वारा दण्डित भी करना चाहिए। ''महर्षि दयानन्द ने शिक्षा–सम्बन्धी व्यय के बारे में सरकार का उत्तरदायित्व निश्चित किया है। वे शिक्षा को इतना महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि सरकार से शिक्षा के प्रसार पर व्यय करने के लिए एक सुनिश्चित राशि की आशा करते हैं। स्वामी दयानन्द राज्य के कुल बजट का 20 प्रतिशत धन शिक्षा पर व्यय करने के आदेश

देते हैं। 10 प्रतिशत आय का उपयोग उन्होंने शिल्प विद्या (भौतिक विज्ञान) की उन्नति के लिए निर्धारित किया है।''(विद्यार्थी,2003पृ0 88) शिक्षालयों को जनता के दान से चलाने का चलन महर्षि के पहले के युग में नहीं था। डी.ए.वी. आन्दोलन की बुनियाद ही 'जनता के दान' पर निर्मित है।

उस समय डी.ए.वी. संस्था के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित निश्चित किए गये :–

1. देशी और प्राकृत भाषाओं के अध्ययन को बढ़ावा देकर शिक्षित और अशिक्षित वर्गों को संयुक्त करना।

2. प्राचीन संस्कृति के अनिवार्य अध्ययन के द्वारा धार्मिक और नैतिक सत्यों का प्रसार करना। नियमित जीवन द्वारा स्वस्थ और उद्योगी आदतों का बनाना।

3. अंग्रेजी साहित्य के अच्छे परिचय को प्रोत्साहन देना और विज्ञान प्रसार से देश के भौतिक विकास को उत्तेजित करना।(वही, पृ0109)

निष्कर्ष

महर्षि दयानन्द ने भारतीय नवजागरण में ऐतिहासिक महत्त्व का योगदान दिया। उन्होंने समाज सुधार के लिए नए उत्साह, ऊर्जा और जोश से भरे विचार–दर्शन का प्रतिपादन किया और 'आर्य समाज' के संगठन द्वारा हजारों संस्थाओं और राष्ट्रीय राजनेताओं, समाज–सेवी लोगों को तैयार किया। महर्षि के देहावसान के बाद यह सिलसिला अनवरत जारी ही नहीं रहा बल्कि उसने विशाल आन्दोलन का रूप ले लिया।

REFERENCES

सरस्वती, महर्षि दयानन्द (1988) *सत्यार्थ प्रकाश;* दिल्ली, आर्य प्रकाशन,

राय, लाला लाजपत (2001) *आर्य समाज;* दिल्ली, आर्य प्रकाशन,

प्रकाश, डॉ॰ राम; *सत्यार्थ प्रकाश–विमर्श :* श्री घूड़मल प्रहलाद कुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, हिण्डौन सिटी (राजस्थान);

विद्यार्थी,डॉ॰ धर्मदेव, (2003) *डी॰ए॰वी॰ आंदोलन का इतिहास (1886 से 1947);* दिल्ली, डी॰ए॰वी॰ कॉलेज प्रबन्ध समिति,